

विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P5 : मध्यकालीन काव्य-॥ (भक्तिकाव्य)
इकाई सं. एवं शीर्षक	M1 : भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय परिदृश्य
इकाई टैग	HND_P5_M1
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र संयोजक	प्रो. चौथीराम यादव
इकाई लेखक	डॉ. शीतांशु शर्मा
इकाई समीक्षक	प्रो. जबरीमल्ल पारख
भाषा सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. भक्ति आन्दोलन की अखिल भारतीय विशेषताएँ
4. भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय प्रसार
5. सामाजिक रूढ़ियों और विद्रूपताओं के विरुद्ध अखिल भारतीय प्रतिरोध
6. राष्ट्रीय भाषाओं का उत्थान
7. अखिल भारतीय सांस्कृतिक विनिमय और संगीत
8. भक्ति आन्दोलन की क्षेत्रीय विशेषताएँ और बहुलतावादी दृष्टि
9. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप -

- भक्ति-आन्दोलन की अखिल भारतीय विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति-आन्दोलन के अखिल भारतीय प्रसार के स्वरूप के विषय में जान पाएँगे।
- सामाजिक विकृतियों के प्रति इसके राष्ट्रीय प्रतिरोध के स्वरूप को जान पाएँगे।
- लोक-भाषाओं और कला की अन्य विधाओं में इसके राष्ट्रीय चरित्र से परिचित हो सकेंगे।
- यह जान पाएँगे कि अखिल भारतीय साम्यता के साथ इस आन्दोलन में अन्तःप्रादेशिक वैशिष्ट्य भी दिखाई देता है।

2. प्रस्तावना

लोक-संवेदना के रस से सराबोर सांस्कृतिक तत्त्वों से परिपूर्ण भक्ति-आन्दोलन की जड़ें अपने समय और समाज में इतनी गहरी पैठी हुई थीं कि भारत जैसे बहुजातीय और बहुरंगी राष्ट्र की शिराओं में भी यह आज से कई सौ वर्ष पूर्व सहज ही फैलता चला गया। देश के विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय भौगोलिक विशेषताओं और सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं के बीच भी पूरे आत्म-विश्वास और निष्ठा के साथ इस आन्दोलन ने जिस प्रगतिशील प्रतिरोधी चेतना और प्रेम की भावना का बीजारोपण किया, वह संस्कृतियों के इतिहास में विरल है। अपने उत्थान के साथ परवर्ती कई सौ वर्षों तक यह आन्दोलन गुजरात से लेकर मणिपुर तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, बहुसंख्य भाषाओं और बोलियों में, सैकड़ों राग-रागिनियों में, स्थानीय सांस्कृतिक तत्त्वों को आत्मसात कर, रूप और शिल्प की अद्भुत ऊँचाइयों के साथ सामान्य जन को मानवीय यथार्थ से परिचित कराता रहा है।

3. भक्ति-आन्दोलन की अखिल भारतीय विशेषताएँ

भक्ति आन्दोलन का विकास उस दौर में हुआ था, जब व्यापारिक पूँजीवाद के प्रसार और सामन्तवाद की पतनशीलता से न सिर्फ परम्परागत सामाजिक-आर्थिक संरचना हिल गई थी, बल्कि लोगों की आस्थाएँ और विश्वास भी डगमगा गए थे। जीवन और मानवता को देखने की एक नई समझदारी की दरकार थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच यह आन्दोलन अखिल भारतीय स्तर पर धार्मिक आवरण में क्रियाशील हुआ और ईश्वर के माध्यम से लोगों को मुक्ति की आध्यात्मिक राह दिखाने लगी। यह शोषित-पीड़ित मनुष्य को सकारात्मक आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न करने वाला प्रगतिशील आन्दोलन था। वस्तुतः भक्तियुगीन आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों, ज्ञान के प्रसार और वैचारिक चेतना का स्तर देखते हुए यह आन्दोलन धार्मिक आवरण में ही अवश्यम्भावी था। सत्ता परिवर्तन इस आन्दोलन का लक्ष्य नहीं था, हालाँकि यह तथ्य है कि परवर्ती दिनों में इसने राजनीति को भी प्रभावित किया था। इस आन्दोलन का लक्ष्य था सामाजिक विकृतियों को अस्वीकारने की चेतना पैदा करना, मनुष्य मात्र को एक धरातल पर रखकर देखना और उन लोगों को वाणी देना जिनकी व्यथा अभी तक ठीक से सुनी नहीं गई थी। अखिल भारतीय स्तर पर भक्ति-आन्दोलन के पुरोधाओं ने यही कार्य किया।

इस तरह इस पूरे आन्दोलन की कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं, जो इसके एक होने का प्रबल प्रमाण देती हैं। के. दामोदरन ने इन विशेषताओं का रेखांकन करते हुए लिखा है कि “भक्ति आन्दोलन ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न मात्राओं में तीव्रता और वेग ग्रहण किया। यह आन्दोलन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। किन्तु कुछ मूलभूत सिद्धान्त ऐसे थे जो समग्र रूप से पूरे आन्दोलन पर लागू होते थे, पहले, धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार करना; दूसरे, ईश्वर के सामने सबकी समानता; तीसरे, जाति प्रथा का विरोध; चौथे, यह विश्वास कि मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करता है, न कि उसकी ऊँची जाति अथवा धन-सम्पत्ति पर; पाँचवे, इस विचार पर जोर कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है, और अन्त में, इन कर्मकाण्डों, मूर्ति पूजा, तीर्थाटनों और अपने को दी जानेवाली यन्त्रणाओं की निन्दा।” (के. दामोदरन, *भारतीय चिन्तन परम्परा*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 318)

4. भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय प्रसार

भक्ति-आन्दोलन के उद्भव और अखिल भारतीय प्रसार के बारे में अनेक सिद्धान्त मिलते हैं। इसके उद्भव को किसी विद्वान ने इस्लाम के विरुद्ध प्रतिक्रिया तो किसी ने ईसाई मत के प्रभाव से जोड़ कर देखा। किसी विद्वान ने स्थापित करने का प्रयास किया कि यह भारतीय चिन्ताधारा का स्वाभाविक विकास था, तो किसी ने यह कहा कि अगर दक्षिण और उत्तर का भक्ति आन्दोलन स्वाभाविक रूप से इतना संयुक्त है, तो इन दोनों के प्रसार के बीच इतना लम्बा अन्तराल क्यों है। यहाँ इन भिन्न-भिन्न निष्कर्षों की विस्तृत पड़ताल का अवकाश नहीं है, लेकिन इनकी मदद से कम से कम यह निष्कर्ष हम सहज ही निकाल सकते हैं कि इस आन्दोलन के अखिल भारतीय विस्तार को एकरेखीय और सरलीकृत दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

इस सरलीकरण से मुक्त हो जाएँ तो सहज ही समझ पाएँगे कि इतनी सूक्ष्म अन्तरवर्ती समानताओं के बावजूद विभिन्न स्थानों में प्रसारित भक्ति के स्वरूप और संवेदनाओं में अलग-अलग विशिष्टताएँ क्यों हैं? देश के विभिन्न भागों में फैली भक्ति पूर्णतः एक ही जैसी क्यों नहीं है? एकेश्वरवादी आन्दोलन में वैष्णवों से शैव में क्या भिन्न है? और एक ही स्थान पर विराजमान कबीर और तुलसी की विश्व-दृष्टि में अन्तर क्यों है? इसीलिए 'लाए रामानन्द' जैसी पंक्तियों में भक्ति-आन्दोलन को सीमित करने से पहले हमारे लिए जरूरी है कि हम उन गहरे आर्थिक-सामाजिक निहितार्थों, कृषि, व्यापार और गूढ़ सामाजिक संरचनाओं को देखें, जिसने दक्षिण में स्थापित भक्ति का उत्तर में प्रसार सम्भव बनाया।

इस दृष्टि से भक्ति-आन्दोलन का मूल्यांकन करने वाले यह मानते हैं कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में नगरीकरण की प्रक्रिया के विस्तार के साथ यह आन्दोलन पहले नगरों में फैला। वहाँ इसको सफल बनाने में शिल्पकारों, व्यापारियों और दस्तकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। धीरे-धीरे इस आन्दोलन में किसान समुदाय से आने वाले भी शामिल होने लगे। आचार्य द्विवेदी का मत है कि नीची समझे जाने वाली जातियों के कवि निर्गुण भक्ति में अधिक आए जो मूलतः शिल्प और कृषि से जुड़े हुए थे। इस तरह कृषि उत्पादन में वृद्धि और शिल्पों के विकास ने उस आर्थिक-सामाजिक संरचना को तैयार किया जिसमें शोषित-दमित समुदायों की वाणी को उनकी भाषा और संवेदना में मुखरता के साथ रखने वाले लोग सामने आए। अखिल भारतीय स्तर पर इस आन्दोलन के प्रसार का यही चरित्र रहा।

5. सामाजिक रूढ़ियों और विद्रूपताओं के विरुद्ध अखिल भारतीय प्रतिरोध

भक्ति-आन्दोलन के दौर में काबिज़ सामन्ती संस्कृति व्यापक स्तर पर क्रूरता की संस्कृति थी। यह मनुष्यों के बीच वर्गीय भेद और ऊँच-नीच पैदा करने की संस्कृति थी। एक खास वर्ग की ऐय्याशी और दिखावे के लिए यह प्रतिक्रियावादी शक्तियों को बढ़ावा देती थी; धार्मिक कठमुल्लों और रूढ़िवादियों को प्रश्रय देती थी। भक्ति-आन्दोलन इन्हीं प्रवृत्तियों के खिलाफ उठा एक आन्दोलन था, जिसके कारण अखिल भारतीय स्तर पर इसमें एक साम्य दिखाई देता है। भक्ति-आन्दोलन के ऊपर ऐतिहासिक रूप से यह दायित्व आ गया था कि इन कुरूपताओं की वास्तविकता से जन सामान्य को परिचित कराए और उनमें इन्हें अस्वीकार करने का साहस उनमें पैदा करे। अपने प्रारम्भिक दौर में राजनीतिक स्तर पर ये साधक सत्ता परिवर्तन की परिकल्पना भी नहीं कर सकते थे किन्तु इतना जरूर कर सकते थे कि अपने व्यक्तिगत आचरण से और अपनी वाणी से शोषित-पीड़ित जनता को चेतनशील बनाएँ। उनमें आत्म-सम्मान और विश्वास पैदा करें और जो सही लगे उसे स्पष्ट कहने का साहस दें।

उत्तर भारत में नानक, कबीर, रैदास, दादूदयाल जैसे कवियों के प्रभाव को इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। इन कवियों ने असन्तुष्ट समुदायों को वाणी दी। अकारण नहीं था कि इन कवियों में से अधिकतर तथाकथित नीची मानी जाने वाली जातियों से आते थे। कई चर्चित सन्त कवि बुनकर, नाई, जुलाहा, तेली, दर्जी, चमार या साधारण व्यापारी जातियों से थे। दक्षिण में मलयाली कवि तुंचथ एलुतच्छन तेली जाति से आते थे और वेमन्ना एक साधारण किसान परिवार से। (शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2005, पृ. 15) गरीब किसान हों, व्यापारी हों या शिल्पी

हों, परम्परागत व्यवस्था से असन्तुष्ट होने के कारण सबके पास थे। कोई अपनी सामाजिक अवस्थिति से असन्तुष्ट था, तो कोई सामन्ती चक्र से मुक्ति पाना चाहता था। किसी के लिए जाति समस्या थी, तो किसी के लिए हिन्दू-मुस्लिम विभेद। शोषण के इस चक्र से मुक्ति और मानवीय एकता और ईश्वर के समक्ष सबकी समानता के आकांक्षी पूरे भारत में पैदा हो चुके थे। इन परिस्थितियों में पहले एकेश्वरवादी आन्दोलन ने और बाद में भक्ति-आन्दोलन की अन्य धाराओं ने अपने आत्मविश्वास और निर्भीकता से सबसे साहस पैदा किया।

6. राष्ट्रीय भाषाओं का उत्थान

अखिल भारतीय स्तर पर भक्ति-आन्दोलन के कवियों का लक्ष्य सामन्तों से या पुरोहितों से नहीं, बल्कि जन सामान्य से संवाद करना था। यह संवाद मातृभाषाओं में ही सम्भव था। भक्ति-आन्दोलन के कवियों के लिए सामन्त-पुरोहित करुणा और व्यंग्य के विषय थे और उनकी भाषा 'कूप जल' थी। देश का कोई भी कोना हो, भक्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृभाषाओं में सामन्ती विकृतियों का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया। इस तरह यह दौर लोक-भाषाओं के उत्थान और प्रसार का दौर था। सत्ता वर्ग की भाषा को भक्ति-आन्दोलन के कवियों ने न सिर्फ अस्वीकार कर दिया, बल्कि सैद्धान्तिक तौर पर उसके अस्वीकार के तर्क भी गढ़े। संस्कृत और फारसी जिस संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रही थीं, वह सामन्तवाद और रूढ़िवाद को प्रश्रय देने वाला था। भक्ति-आन्दोलन के कवियों का लक्ष्य इस संस्कृति का प्रतिरोध और लोक-संस्कृति की स्थापना था। चाहे सगुण हो या निर्गुण, सूफी हो या सन्त, तमिल हो या असमिया, हिन्दू हो या मुस्लिम, अखिल भारतीय स्तर पर कवियों ने उन समुदायों की भाषा में कविता रची, जिनकी संवेदनाओं को मुख्य धारा के साहित्य में स्थान नकार दिया गया था।

भक्ति-आन्दोलन के इन कवियों में कई ऐसे थे, जिन्हें उच्च वर्ग की इन भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था, किन्तु इन भाषाओं के ज्ञान प्रदर्शन की जगह वे उन संवेदनाओं, प्रतीकों, कहानियों, मिथकों, आवाजों को पकड़ना चाह रहे थे, जो मातृभाषाओं में प्रकट हो सकती थीं। व्यापारिक पूँजीवाद के प्रसार के साथ इस दौर में हम यह भी देखते हैं कि नगरीकरण और बाजारों के निर्माण के साथ जातीय निर्माण की प्रक्रिया भी प्रबल होती है। सम्पर्क के इस विस्तार का फल यह भी हुआ कि भक्ति आन्दोलन के विभिन्न कवियों की कविता में न सिर्फ हम अन्य लोक-भाषाओं के शब्द और ध्वनियाँ देखते हैं, बल्कि यह भी पाते हैं कि कुछ कवि अन्य लोक-भाषाओं में कविता करने में भी पूर्णतः समर्थ हैं। तुलसी, जायसी, विद्यापति, इत्यादि इस दृष्टि से अनूठे कवि हैं। तुलसी ब्रज में भी उतने ही निपुण हैं, जितने की अवधी में।

जातीय निर्माण की प्रक्रिया में ही कबीर की कविता पेशावर से लेकर बंगाल तक के लोगों का कण्ठाहार बनी। भक्ति-आन्दोलन के तमाम कवियों की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने भी उनकी भाषाओं को प्रभावित किया, उनकी शब्दावली को समृद्ध किया और आपसी सम्बन्धों को सुदृढ़ किया। इसी बिन्दु को ध्यान में रखते हुए दादू दयाल के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि "भक्ति-काल के अधिकांश सन्तों की तरह दादू ने भी यात्री का जीवन जिया। उन्होंने गुजरात से चलकर राजस्थान के हर कोने की यात्रा की। इस निरन्तर यात्री जीवन का प्रमाण उनकी कविता की भाषा देती है। यद्यपि उनकी काव्यभाषा का बुनियादी ढाँचा पश्चिमी राजस्थानी से बना है, लेकिन उसमें गुजराती और पंजाबी के शब्दों का भी मेल है।" (मैनेजर पाण्डेय, हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2013, पृ. 30) अगर इन कवियों की कविता, भाषा, शब्दावली और संवेदना के स्तर पर एक दूसरे से इतनी संयुक्त है, तो यह भक्ति आन्दोलन के अखिल भारतीय स्वरूप का ही परिचायक है।

7. अखिल भारतीय सांस्कृतिक विनिमय और संगीत

अखिल भारतीय स्तर पर लोकजागरण की इस प्रक्रिया को समझने का एक माध्यम संगीत भी है। संगीत वह माध्यम है, जो बन्धनों को तोड़ता है। अपनी पुस्तक 'सूर-साहित्य' में हजारीप्रसाद द्विवेदी उचित ही रेखांकित करते हैं कि मध्ययुग में संगीत के उत्कर्ष के समय मुसलमान उस्तादों ने जो गाने बनाए उनमें राधा माधव जरूर आते हैं। (हजारीप्रसाद द्विवेदी, सूर-साहित्य,

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, सन् 1989, पृ. 126) भक्ति-आन्दोलन के कवियों की रचनाएँ भी बन्धनों को तोड़ने वाली थीं, और इसीलिए संगीत विधा के साथ इनकी जुगलबन्दी विस्मयकारी है। अखिल भारतीय स्तर पर इनके आपसी सम्बन्ध और विस्तार को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं कि “कितना शानदार युग था। एक ओर मानसिंह का दरबारी संगीत है, दूसरी ओर सूर और तुलसी का गैरदरबारी संगीत है। दक्षिण में संगीत का केन्द्र बना कर्नाटक। इस केन्द्र के संचालक थे पुरन्दरदास। और वह दरबारी गायक नहीं थे। इस तरह वह सूर और तुलसी की परम्परा से जुड़ जाते हैं। ये सब गायक लोक-भाषा में रचनाएँ करते थे, उनकी भक्ति का आधार था प्रेम और उसका परिणाम था लोकहिता।” (रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2009, पृ. 192)

संगीत और साहित्य के इस अनूठे संगम का ही प्रभाव था कि एक ही किस्म की राग-रागिनियाँ देश के विभिन्न कोनों में मिल जाती हैं, दक्षिण के राग का उत्तर के राग से सम्मिश्रण होता है। दक्षिण का कान्हारा विभिन्न नामों से उत्तर में गायन का आधार बनता है और मालवा और गौड़ प्रदेश के राग मिलकर मालवगौड़ हो जाते हैं। (रामविलास शर्मा, वही, पृ. 194) एक ही राग देश के विभिन्न क्षेत्रों की कविताओं का आधार बनते दिखाई देती है। इसी का प्रभाव था कि जिन रागों का इस्तेमाल भक्ति आन्दोलन के कवि करते दिखाई देते हैं, उनका स्वरूप मूलतः अखिल भारतीय था। एक ही राग का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों के कविगण करते हुए सहज ही मिल जाते हैं। रामविलास जी लिखते हैं कि “एक राग है सोरठा। इसका सम्बन्ध सौराष्ट्र से होगा। इसका उल्लेख कबीर नामदेव, सूरदास और तुलसीदास के पदों के साथ है।... एक राग है मुल्तानी। इसका सम्बन्ध मुल्तान से होगा। सूरदास और मीराबाई के पदों के साथ इसका नाम आता है।... बाहर से आ कर भारत में बसने वाले गुर्जर, आभीर आदि गणसमाजों के नाम पर कुछ रागों का चलन हुआ। राग गूजरी का उल्लेख चर्यापदों, विद्यापति, मीरा और सूरदास के पदों के साथ है।... विद्यापति का अहिरानी, शंकरदेव का अहिर, सूरदास का अहीरी- सब एक ही राग है।” (रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2009, पृ. 195) नवजागरण के इसी प्रवाह में हम देखते हैं कि अखिल भारतीय स्तर पर संगीत के विविध केन्द्र स्थापित होते हैं, जिनका आपस में बहुत ही सृजनशील सम्बन्ध दिखाई देता है। मुल्तान से लेकर बंगाल तक एक ऐसी धारा प्रवाहित होती है जो भक्ति-आन्दोलन की संवेदना को जन-सामान्य के हृदय में चिरस्थायी रूप प्रदान कर देती है।

8. भक्ति आन्दोलन की क्षेत्रीय विशेषताएँ और बहुलतावादी दृष्टि

उक्त विश्लेषण के बाद यह स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है कि भक्ति-आन्दोलन अखिल भारतीय जरूर था, किन्तु इसका चरित्र बहुआयामी था। देश के अलग-अलग भागों में सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के हिसाब से भक्ति आन्दोलन ने अलग-अलग रूपाकार ग्रहण किया था। इसलिए भक्ति को देखने की दृष्टि बहुलतावादी होनी चाहिए। अगर भक्ति को हम बहुवचनता के साथ नहीं देखेंगे तो उसके वास्तविक अर्थों को उद्धाटित करने में असमर्थ रहेंगे। इस बहुवचनता को स्वीकार कर ही हम उन क्षेत्रीय समस्याओं और जरूरतों से रू-ब-रू हो पाएँगे, जिनके कारण यह अमूल्य चेतना इतनी विस्तृत होती चली गई। इस सन्दर्भ में दक्षिण के भक्ति-आन्दोलन के गम्भीर अध्येता ए.के.रामानुजन के तर्क का विस्तार करते हुए गोपेश्वर सिंह लिखते हैं कि “जैसे ही उसमें बहुवचनता आएगी, उसका अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य सही अर्थों में उद्धाटित होगा और तब जो हम काशी में खड़े होकर और काशी की दृष्टि से भक्ति को देखते हैं उसकी जड़ता टूटेगी। तब आप देखेंगे कि शंकरदेव भक्त होते हुए कैसे कुछ वह नया करते हैं जो कबीर, सूरदास या तुलसीदास नहीं करते हैं। इसी तरह से दूसरे-दूसरे प्रदेशों में हर क्षेत्र के भक्ति-साहित्य की अपनी कुछ खूबियाँ हैं, कुछ अपना वैशिष्ट्य है और उस वैशिष्ट्य के सहारे वह अपनी पहचान रखता है और वहाँ की क्षेत्रीय संस्कृति और जातीयता के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करता है।” (ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु (सं.), पाठ और पाठ्यक्रम, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2015, पृ. 74)

उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में भक्ति-आन्दोलन की विशिष्टताओं को देखें। महाराष्ट्र के भक्ति-आन्दोलन में जाति प्रथा के खिलाफ बहुत ही तीखा स्वर विद्यमान था। नामदेव और एकनाथ जैसे कवियों ने वर्ण-व्यवस्था को अस्वीकार करने का मार्ग प्रशस्त किया। नवजागरण के दौर में अगर महाराष्ट्र में जाति-व्यवस्था को खत्म करने के लिए भास्वर प्रतिरोध होता है, तो उसमें उनके भक्ति-आन्दोलन की गहरी प्रेरणा है। उत्तर भारत में यह स्वर कबीर में भी विद्यमान था, किन्तु अपनी सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच जातिवाद को मिटाने की चेतना धीरे-धीरे वहाँ धीमी पड़ती जाती है, और सगुण भक्ति की ऐसी धारा का विकास होता चला जाता है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था को पुनःस्वीकार कर लिया गया। मजेदार यह है कि महाराष्ट्र में प्रचलित सगुण धारा का जातिवाद के प्रति वही रवैया नहीं था, जो उत्तर में प्रचलित धारा का था। उसका स्वरूप भी पर्याप्त भिन्न था। मुक्तिबोध लिखते हैं कि “महाराष्ट्र में कृष्ण की शृंगार भक्ति नहीं थी, न भ्रमरगीतों का जोर था। कृष्ण एक तारणकर्ता देवता था, जो अपने भक्तों का उद्धार करता था, चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो। महाराष्ट्रीय सगुण कृष्णभक्ति में शृंगार भावना और निर्गुण भक्ति, इन दो के बीच कोई संघर्ष नहीं था।” (गोपेश्वर सिंह (सं.), वही, लेख – मुक्तिबोध, मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का एक पहलू, पृ. 112) राजनीतिक चेतना के रूप में भक्ति-आन्दोलन का विकास इसी चेतना का विस्तार था। शिवाजी के राजनीतिक अभियानों में तुकाराम की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। इस प्रतिरोधी चेतना के बरकरार रहने की ही परिणति थी कि आज भी भक्ति-आन्दोलन से उपजे कवियों की चेतना का दलित आन्दोलन में पूरी निष्ठा के साथ प्रयोग होता है और देश के अन्य भागों में पल्लवित दलित आन्दोलन महाराष्ट्र की ओर देखता है।

इसी तरह पूरे उत्तर भारत में जिस एकेश्वरवाद का प्रसार होता है वह पंजाब में विशिष्ट रूप ले लेता है और उसकी परिणति अन्य जगहों के आन्दोलन से अलग होती है। पंजाब के एकेश्वरवादी आन्दोलन ने अपनी विशिष्टता को लम्बे समय तक बरकरार रखा। उन्होंने पूरी गम्भीरता से इसके लिए प्रयास किया। गुरु अर्जुनदेव द्वारा सिक्ख धर्मग्रन्थ, गुरु ग्रन्थ साहिब का किया गया संग्रह इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसमें नानक और उनके अनुयायियों के अतिरिक्त कबीर और रैदास जैसे एकेश्वरवादी गुरुओं की रचनाएँ समाहित हैं, जबकि परम्परित भक्तिपरक रचनाएँ बिल्कुल ही नहीं ली गई हैं। पूरे उत्तर भारत में धीरे-धीरे राम और कृष्ण की सगुण भक्ति धारा फैलती चली गई, लेकिन पंजाब में यह अपना पैर फैलाने में असमर्थ रही और आज भी पंजाब में सिक्ख धर्म का ही वर्चस्व विद्यमान है।

कर्नाटक में बारहवीं सदी में जिस वीरशैव मत और लिंगायतों का विस्तार होता है उनकी भक्ति के आराध्य शिव थे, जो इन्हें अन्य प्रदेशों से अलग करता है। इस आवरण में भी इसके महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर बसवण्णा रूढ़ियों और भेद-भाव को अस्वीकार कर रहे थे। राजस्थान में मीराँ का स्वर स्त्री-मुक्ति का प्रमुख स्वर बन कर उभरता है। सामन्ती व्यवस्था और ‘कुलकानि’ की मर्यादा का जैसा अस्वीकार मीराँ की कविता में दिखाई देता है, वह भक्ति-आन्दोलन के किसी और कवि में नहीं। उत्तर पूर्व भारत में वैष्णवों की भक्ति का अलग ही रूप विकसित होता है। शंकरदेव कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध होते हुए प्रारम्भिक सन्तों की चेतना से लैस दिखाई देते हैं।

इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर मैनेजर पाण्डेय रेखांकित करते हैं कि “भारतीय समाज के इतिहास, उसकी सांस्कृतिक प्रक्रिया और उसके भीतर उठे भक्ति-आन्दोलन से कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीराँ का सम्बन्ध एक जैसा नहीं है। इसलिए सामाजिक अन्तर्विरोधों और भावात्मक वैचारिक द्वन्द्वों के बारे में उनकी चिन्ताओं में भी अन्तर है।” (मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, सन् 2003, पृ. 23) किन्तु इस अन्तर का तात्पर्य कभी यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि भक्ति-आन्दोलन की कोई एकता नहीं थी। भक्ति आन्दोलन अपनी संरचना में अखिल भारतीय स्तर पर एकीकरण के तमाम तत्त्व समेटे हुए था और यही कारण है कि अपनी क्षेत्रीय विशिष्टताओं के साथ सजग रूप से इससे जुड़े कवि परम्परा से और समकालीनों से निरन्तर आदान-प्रदान करते रहते हैं। मैनेजर पाण्डेय इसे रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि अगर कबीर के काव्य में जयदेव, नामदेव और गोरखनाथ का आदर के साथ स्मरण है, तो जायसी के अखरावट में कबीर की प्रेम-साधना के

महत्त्व की पहचान भी है। मीराँ की कविता में भक्ति-आन्दोलन की एकता का बोध दूसरों से अधिक व्यापक है। वहाँ नामदेव, कबीर रैदास, धन्ना और करमाबाई के साथ-साथ नरसी मेहता के महत्त्व की पहचान भी है। (मैनेजर पाण्डेय, वही, पृ. 47) कबीर के महत्त्व को सूफी कवि जायसी आदर के साथ याद करते हैं और रविदास, दादू, धन्ना आदि उनका महत्त्व स्वीकार करते हैं। (मैनेजर पाण्डेय, हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2013, पृ. 16)

9. निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि भक्ति-आन्दोलन एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसकी कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो सम्पूर्ण भारत में इसकी विभिन्न धाराओं में सामान रूप से देखी जा सकती थीं। विषय के स्तर पर यह आन्दोलन समानधर्मा चेतना से पूरे भारत में सक्रिय था, किन्तु बहुलतावादी दृष्टि से देखने पर यह भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हर प्रदेश के साहित्य और अन्य कलाओं की अपनी सुगन्ध भी इस आन्दोलन में विद्यमान थी। देश के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप इस आन्दोलन ने अपना विशिष्ट चरित्र विकसित किया था। लोक-संवेदना से यह आन्दोलन इतने गहरे संयुक्त था कि अखिल भारतीय स्तर पर इसने आधुनिक राष्ट्रीय भाषाओं को नया आयाम दिया। भक्ति-आन्दोलन के दौर में लोक-भाषाएँ शिल्प और संवेदना के स्तर पर हमारे भावों को पूरे देश में अभूतपूर्व स्तर पर प्रकट करते दिखाई देती हैं। भक्ति-आन्दोलन के कवियों का साहित्य के साथ-साथ संगीत से भी अनूठा रिश्ता था और इस युग के संगीत को देखने से पता चलता है कि विभिन्न प्रदेशों में सक्रिय इस आन्दोलन के बीच आपसी रिश्ता कितना गहरा था। यही कारण है कि प्रतिरोध की चेतना और साम्प्रदायिकता, जातिवाद, स्त्री-शोषण जैसी प्रवृत्तियों के खिलाफ जन-जागरण के लिए हम जब भी परम्परा की ओर मुड़ कर देखते हैं, तो भक्ति-आन्दोलन से ही सर्वाधिक सामग्री प्राप्त होती है।